

प्रकाशक :

मालोटिया फाउन्डेसन

३, न्यू रोड

कलकत्ता - २७

लेखक के सर्वाधिकार :

सुरक्षित हैं :

मूल्य : तीस रुपये

मुद्रक :

डी टेक्निकल एण्ड जनरल प्रेस

१७, ब्रूकफोर्ड रोड

कलकत्ता - ७१

अने कान्त !

जीवन देह विदेह की-अन्विति है।
मूर्च्छा विमुक्त दृष्टि से इस सत्य को
अनुभूत किया जा सकता है।

रूप को ही-अव्य इति मान कर चलने
का विज्ञान का एकान्त आग्रह दृष्टि को
विनाश के कगार पर ले आया है।

सर्वान्ना की-प्रतीति का राजमार्ग केवल
अनेकान्त है, वही-कुठित चेतना को ठोठ
मुक्त कर सकता है।

अक्षय तृतीया
वि.स. २०४४

कन्हैयालाल शर्मा

सृष्टि

दृष्टि

० निरर्थक आशंका	१
० बोधि का शरण	२
० कल्पना का पुल	३
० हैता हैत	४
० निरीह	५
० आनन्द	६
० आकाश	७
० अनुग्रह-अभिव्यक्ति	८
० निरक्षर-अक्षर	९
० संवेदनमय मन	१०
० सत्य का भाव्यम	११
० स्वधर्म	१२
० जुगुन	१३
० एकालोक्य मे	१४
० देह-विदेह	१५
० देह तप	१६
० स्वप्न-सत्य	१७
० राग	१८
० विनत द्रव	१९
० शाश्वत	२०
० हेमन्ती वारल	२१
० लीला कमल	२२
० अयाति	२३
० मन-भृग	२४

सृष्टि

दृष्टि

० भारी	२५
० लजवंती	२६
० भक्त-देवता	२७
० क्रिया	२८
० बंद	२९
० सृजन का सत्य	३०
० पौष्टशाला	३१
० प्रसूत आत्मा	३२
० मुखौटा	३३
० बांसुरी-वीणा	३४
० गुलमुहर	३५
० निकष	३६
० सृजन	३७
० मायावी मन	३८
० भैं-नुम	४०
० पिया	४१
० विश्रान्ति के द्वीप	४२
० अनुभूतियां	४३
० आराध्य	४४
० ग्रीष्म	४५
० निर्गुण	४६
० अंजुरी में समुद्र	४७
० कठफोड़ा	४८

अन्विति।

सृष्टि	सृष्टि
० मांत्रिक शब्द	४८
० सांझ	५०
० सांझ - एक चित्र	५१
० सत्य-श्रुति	५२
० कल्पना के पांच	५३
० नागफणी	५४
० निश्चय	५५
० विश्व पुरुष	५६
० गीतों की-माला	५८
० अपने में विश्व	५९
० सूर्य	६०
० ऊँड़-मुक्ति	६१
० प्रतिक्रिया	६२
० विशेषणों का कोश	६३
० आषाढ का पहला दिन,	६४
० काव्य	६५
० कविता	६६
० विडम्बना	६७
० आकांक्षा	६८
० काशी	६९
० अग्निका	७०
० चेतना की दूध	७१
० मे	७२

અન્વિતિ !

મૃષ્ટિ	૬૫૬
૦ કમૌટી !	૭૨
૦ આલમ્બન !	૭૬
૦ પુલધાર્વ	૭૪
૦ સન્દર્ભ	૭૫
૦ મમતા !	૭૩
૦ શિશુ-મન	૭૭
૦ મહાપ્રશ્ન	૭૮
૦ ગતિ-અગતિ	૭૯
૦ અમિનય	૮૦
૦ આત્મન્	૮૧
૦ શ્રદ્ધા	૮૨

राधा
सम्यत
को

० निरवधि आशंका।

शूल पर है
कुआरे सत्य की
प्रिया की सेज
करेगी अहिंसा की-
सम्पूर्णता को
परिभाषित
तमंचे की गोली
देगा विश्वास को
अखंडता का
प्रमाण पत्र
कालकूट का खण्ड पत्र,
व्यर्थ
ध्वस्त हो
तुम तो मित्र
बेसी पड़ोसा है
तुम्हारा सत्य
तुम्हारी अहिंसा
तुम्हारा विश्वास
अभी उस
पराकाष्ठ पर
जब कि
देगा तुम्हें कोई
शूल. गोली या कालकूट।

31.3.87

० बोधि का क्षण ।

इडा
वन गई
पीड़ा,
लौट रहा
मनु
भिर श्रद्धा की ओर,
बन गया
मटक कर
मन-भृग
जिज्ञासाओं की-
मरी जिन्का के पीछे
वन गई
पराजय की- ग्लानि
आत्मबोध का क्षण,
जान गया गौतम
निरर्थकता
हठ छोड़ की-
माहुरे उसे अब
विभी मुजाता की-
संवेदना की स्वीर
पान कर जिसे
हो उठे संश्लिष्ट
भिर
मेनना का बोधिभूष ।

31.3.२7

२

० कैल्पना का सुरव ।

कहां हैं

काल कायर का

विवर १

उंस लेतां

जो गोरे दिन

सांवली रातों को

न जाने

विचर से निकल कर ?

बचाने के लिये

पूज को

इन्द्र के कोप से

उठाया था वृष्णा ने

गोवर्धन

अंगुली पर,

क्या नहीं होगा

फिर कभी-

अवतरित

ऐसा कोई महाबली

जो रख दे

उठा कर

हिमालय का

शैल शिखर

विवर के मुख पर १.

१.४.४७

३

० हैता हैत !

दिवता है

एक जो

आकाश

बद है

अनन्त

आकाशों का

समवाय,

दिवता है

एक जो

पारावार

बद है

असंख्य धुंधों का

सहवास,

कर लेता

निभज्जित हैत को

अपने में

गुणचर्जिता का

अहैत !

१५.५.४७

४

० निरीह !

कर दिये
अमिष्यन्तिभों के
सत्री-हार बन्ध
लगा कर
वर्जनाओं की
अगिलाएं
भर गई
धुल कर
कौमल्य अगुश्रुतिभों
लादे
कन्धों पर
संवेदना का शव
लगा रहे नारे
निरीह बे-चारे
'पूज्यन्ति निरजीवी हो'।

(म.म. ६)

० आनन्द !

सुख
कपूर
उड़ जाता
निमिष भर में,

दुःख
कीचड़
बैठ जाता
पलवी मार कर,

आनन्द
आत्मा के
मानसरोवर का,
निर्मल शतल !

14.4.87

६

० आकाश।

घटना है

रूप, रस

रंग, गन्ध

जो नहीं

घटना

वह है

आकाश,

घटने का

साक्षी

अघट।

15.4.87

6

० अनुभूति-अत्रिव्यक्ति !

चाहिये
चेतना के
चरणों को
संपूजित
होने के लिये
कोई
शापित महिला,
जाती है
इसी लिये
अनुभूति
करने
स्वयं को
अत्रिव्यक्त
शिव के पास !

15.4.87

८

० निरक्षर-अक्षर।

है
आकाश की
पुस्तक में
संकलित
दिन का निबन्ध
रात की कविता,
यह है
समय का पाठ्यक्रम
पर
नहीं लगता
उस का मन
पलटता रहता
यों ही-
निरर्थक पन्ने
रह गया
निरक्षर
बेकारा अक्षर।

८

16.4.87

० સંવેદન મય મન !

નદિયાં
અમિલ્યન્તિયાં
દિમાલ્પમ વી
પ્રતિ વિમિલત
ગગન
પદાશ્રિત
અકિંચન
કિતના
સંવેદનમય મન
દિશ્વતા જો
સમાચિક્ષ્વ
આત્મલીન
નિરંજન !

16.4.87

૧૦

० सत्य का माध्यम !

अक्षर से
नहीं
शब्द से है
मेरी पहचान
नहीं काली
जिसने दृष्टि ग्रहण
कर ली है
उसे कान
मही जेतना का
कोई रुख
क्रम
सत्य है
सत्य का माध्यम !

17.4.87

११

० स्वधर्म !

बली
निमलता ,
अपने आप
छट मुख से
अच्छो दृष्टि नीर
पर
बन जाता
पेदे का
सूक्ष्म दिग्ग
उल के लिपे
सदृश मुक्ति का
हो !

२२.५ ८७

१२

जुगुनु।

बुझने दी-
शेख बनी लीली
मर गये
असंख्य सूर्य
रही- अनजली
हनेहिल वसिक्का
पर
रहा नका (ला
एक नहा ला
जुगुनु
महाकाय
निरंकुश
तम की सत्ता !

24.4.57

१३

भरा हुआ
 है
 विचार के
 प्रखर शब्दों से
 आज भी
 मेरा मन-तूजीर,
 नहीं उड़ि है
 शून्य
 रक्त भर भी
 देह-अनुप की
 प्रभंचा
 पर
 भांग रहा है
 संस्कृति के
 नाम पर
 जरा जीर्ण
 विकृति को का
 ह्वय भू भुवन
 शोण
 फिर दक्षिण में
 मेरी-चेतना का
 केन्द्र
 अग्रुदा
 जिस को कि मैं
 नहीं कर सकूँ
 बिछ
 राजकुल की-
 अहमन्यता के प्रतीक
 भौंकते
 श्वान का भुवन!

28.4.87

० देह तप !

मैं

सूर्य

स्वयं रचता

पुनर्जन्म के लिये

अंशुवार ,

मोगती

प्रलय की पीड़ा

माता दिशा ,

वामना

अंगुली-

पिता आकाश ,

मोहा विष्ट मैं

नहीं कर पाता

क्षय

सन्वित कर्म

निरर्थक

मेरा

देह तप !

२५.५.४७

० स्वप्न - सत्य !

नही आर
सुभनं
आर गया
एक सपन
रहा
वृत्त पर
अंतर में
दिपा
सत्य
तरु की-
साधना का फल !

1.5.87

१७

० राग।

नहीं

दोषी झूल

कहीं

मूल में

झूल

हुई कुंठाएं

झूल

या शायद

गुलाब के मन में

राग का बबूल!

उ.५.४७

१८

० विनत दूब !

जनमती है
पंनपती- है
विनत नन्ही दूब
निशाल बिटपों
कुलुमित लताओं की-
घोर उपेक्षा के बीच
पर
रह जाती-
अपलक
लज्जानत
रूप गर्विता वनश्री
जब
ढंकेली-
उस हरिताम्र के
हनेहं चले ले
जंगी चरती-
अपना शील ।

० शाश्वत ।

सुख कर
दिन
वन जाता
चरती की
कोख में
हीरा,
जल कर
रात
कोमला,
वदलता
रूप
नहीं होती
निशेष
अव्य की सत्ता ।

उ.५.४७.

२०

० हेमन्ती बादल !

आ गया

आकाश पवन संग

आकाश के आंगन

गजदन्ती

हेमन्ती बादल ,

नहीं साथ

सन्दली बिजलियां

नहीं साथ

मोहक इन्द्रधनुष

साथे मौन

चातक, मोर

यह कोई छलिया

कहां चित चोर ?

नहीं उठे

सोये हल

चिढ़ाता मुँह

पोखर का जल

हुआ बोझ

निरर्थकता का

लौट गया

देखे पांव

अपने गांव

हेमन्ती बादल

० लीला कमल !

यहां कहां
लीला कमल ?
दल दल
तट का छल,
आगे चल
दीर बे वा
भरकत जल
फिर
लहरों का जंगल
पर खेगा
अंतः बल
हुआ
अगर सफल
होगा
हस्तगत
चेतना का
उत्स
लीला कमल !

म. ५. ४)

२२

० यथाति !

नही होता

१।७२ का जनक

विचार

कभी-वृद्ध,

ले लेता

मांग कर

यथाति भी-तरह

संतान का तारुण्य,

हो जाता

वे-चा। १।७२

असमय में

जराजीर्ण

नगण्य

बिता मिले

पिता से

प्रेम।

असम, अवर्ण्य !

५-५-४७

२३

० मन मृग !

मन चंचल,

आखों में

विम्विल

मृग जल

केवल छल

चर दूब

पग लल

मत अटक

जंगल

बैठा

लुब्धक

साथे

शिर-फल !

5.5 87

२४

० माटी !

लगा बनाने कुंमकार जब
प्रतिमा, माटी बोली,
उठा खेत से मुझे यहां क्यों
ले आये अज्ञानी ?
नहीं देवता देवी बनना
दमम भरे अभिमानी,
रहूं कृषक के हल के नीचे
रचूं हरित रांगोली !
नहीं जामना मिले स्वर्ण का
रत्न जड़ित सिंहासन,
धृत आपूरित दीप माल से
करे भक्त जन अर्चन,
रहूं बीज की जननी, भर दूं
मैं गूखे की ओली !
नहीं चाहिये वसन रेशमी
मठ-मंदिर की कारा,
मुक्त गगन के तले मिले प्रिय
श्याम मेघ की चारा,
वही फेंक आ, मैं परनुंगी
दूना दल की ओली !

० लज्जवंती !

नहीं
सह पाई
कोमल अंगुली का
उल्लिखित संस्पर्श
सुकुमारी लज्जवन्ती,
मुँह गाँधे
नयन किसलय
सर गाँधे
प्राण में अज्ञात भय,
कितनी-
विकसित
इस वन्य कन्या की-
वानस्पत्य चेतना का
काश।
बदल जाती-
स्पर्श सुख की-
नागर वासना
दिव्य प्रेम में !

7.5.87

24

० भक्त - देवता !

भक्त
वह
करते समय
पूजा
जाये
कामना भूल !

देवता
वह
तरसे लेने
भक्त की
चरण धूल !

7.5.87

26

० क्रिया।

भेद संकती है
प्रति क्रिया का
अद्वैत लघु
केवल क्रिया,
नहीं बनती वह
मृतपट्ट की
देह चमत्क्रिया
देखती वह
निरावरण दृष्टि से
अपनी
स्वतंत्र सत्ता
जो है
चेतना का
अंतिम सत्य !

१.५.४७

२८

० वूंद !

वन गई
अहिल्या
स्वर्ग पात्र में
भरी वूंद !

वन गई
राम का चरण
भाटी में
पड़ी वूंद !

१.५.४७

२५

० सृजन का सत्य ।

शूल
फल
दोनों में
सृजन का सत्य,
यह है
करता
अकथ्य के
कथ्य,
लिखता
तम भस्म से
समय का
का लिखा स
अपना
महाकाव्य
आदित्य ।

11.5.87

३०

० पौच साला !

मल
लेने दो
किसी भी
विचार को
गहरी जड़ें
शोषें भी
जीवन-रस
फूटते ही
अंकुर
रोप दो
शब्द के
गमले में,
रहो स्वयं
बन कर
मात्र नसीरी।

११.५.४७

३१

० प्रबुद्ध आत्मा ।

जीव का
जनक
जल,
सूक्ष्म की
जननी
अग्नि,

नही
छूट सकते
वंशगत विकृतिभों से
जड़ तत्व,

केवल
कर सकती
प्रबुद्ध आत्मा
स्वयं जो
संस्कारों से
विमुक्त ।

॥५८७

३२

० मुखौटा !

लगाये
आदम का
मुखौटा
पुला हुआ है
शैतान
बनाने
समग्र चरती को
चिता
आकाश को
पत्नी ता,
लगता है
समीप है
सर्वनाश का शण
नही बचेगा
कोई भी नचिकेता
बहने के लिये
यम के द्वार से
सदैव लोटने की कथा

व्याप जायेगी
 महाश्मशान की
 नीरवता
 केवल रहेंगे
 अपलक ताकते
 एक दूसरे को
 नंगुलक चन्द्रमा
 काँझ अरती,
 कदाचित
 उतरे
 अनन्तकाल बाद
 फिर कोई
 विकसित जीव
 करने लगेज,
 मिला जाय
 उन्हें
 गहरी पत्ती के तले
 रहे
 डायनासोर की तरह
 कुछ मानवी कंकाल ।

० वांसुरी - वीणा !

कितनी-

प्रिय हैं

मुझें

अच्छ-रसिक

द्विजमभी वांसुरी ?

होना

जिस से

उन्नतचित्त

मेरी-आत्मा का

संगीत,

क्या करूं

बेकर

तुम्हारी-

अद्विज वीणा ?

जिसे हैं

केवल

मुझ से

पाणिग्रहण की-

अपेक्षा !

11.5.87

३५

० गुलमुहर !

खड़ा है
ठह ठह करते
रक्त फूलों से लरा
गुल मुहर,
नही करता
विशुद्ध उल्ले
हरिण्यकश्यपु ग्रीष्म
होलका लू
वह अग्नि स्नात
प्रह्लाद
निर्विषाद
देता छाया भिन्न
स्नेह दान
महा प्राण
गुलमुहर !

12.5.87

३६

० निष्काम ।

लगता है

कोई

सुन्दर

कोई

असुन्दर

क्या है

मन के पास

इस निष्काम का

निष्काम ।

ह्याह

वसी है

उस की

अंश-चेतना में

कोई

काल्पनिक अवस्था

जिस की.

देह यष्टि की.

अनुरूपता - प्रतिरूपता

हू

प्रतिबद्ध दृष्टि का

चयन, अचयन !

12.5.87

० सृजन !

मुझे है
शब्द की
प्रतिष्ठा का द्यान,
रखता हूँ
वही
जहाँ जिस का द्यान,

अनुशासित
मेरे मानाकुल हृद
उनमें परस्पर
रक्त का समव्यय,

नहीं सृजन
मेरे बिचे
व्यसन,
वह संजीवन
प्राण का
स्पर्दन ।

13.5.87

० मायावी मन !

नीम
मंजरित
कितना मचुरिम !
भूल गई
बौराई सांसें
प्रेमा सरवी
रसना का अनुभव
पिला
विषय का
भादक आसव
ठगता रहता
मायावी मन
अजित इन्द्रियं
केवल साधन
करता वह
रखिया
आस्वादन ।

13-5-87

३६

० मैं, तुम !

केवल
मैं हूँ
मेरे लिखे
इस वीथी में,
करता हूँ
समर्पित
तुम्हें
अन लिखे गीत
जिन में
तुम हो ।

13.5.87

४०

० पिया !
 दुज की
 चन्द्र कला सी
 तुम्हारी
 स्मित
 कर देती
 तरंगित
 भावार्जव,
 भर लेना
 अंक में
 कटि शीणा
 वीणा
 आलापना मल्हार
 हो उठता
 करुणा के
 निरञ्ज नम
 खिर आते धन
 डेरती
 विरहाकुल माटी की-
 आत्मा
 चातकी
 पिया ओ पिया !

० विश्रान्ति के द्वीप।

वही है

थकान

अन्त मात्रा का,

मले ही-

धबल कर

अपने अपार से

उत्तर आये

पारावर के हृदय में

विश्रान्ति के द्वीप

पर जाना होगा

उस की समग्रता को

कूल के - समीप

जिस की

छाती पर अंकित है

असंख्य अंगुष्ठाभी

लहों का देहाभास

जो अर्पित कर

उसे

शंख. स्त्री. मुक्ता

लौट आई थी

पुनः

मंजुस्वार के फोड़ में !

० अनुभूतियां ।

आती
प्रतिक्षण
अनुभूतियां
चाहती
दू उन्हें अभिव्यक्ति
नहीं मेरे पास
इतने निरर्थक शब्द
कर सकूं पूरी
सब की कामना ।
उतारता
कलम की नोक से
कागज पर
केवल उन्हे
जो नहीं होती
विगत
समय के साथ
करती
संजीवित
किसी गौतम की-
मोड़ संवेदना
जो चरकर अंक में
खींच लेती-
आहत हंस की
रक्तिम ग्रीवा में
झंसा
किसी हल्भारे
देवदत्त का शर ।

18.5.87

४३

० आराध्य !

॥
मे

मेरा आराध्य
नहीं पहुँचने देती
मुझे
मुझ तक
मत्तों की भीड़
हो कर
वाध्य
मुनाने लगता
उन की मनोतिषां,
भूल जाता
ये, है—मुनोतिषां
साध्यक के पथ की,
होने ही-लं डित तप
दूर जाती
आत्म वासी विमुर्च्छा,
पछताती
करता
आत्म आलोचना
पुनः अनुभूतता
यह सत्य
मे
मेरा साध्य !

० ग्रीष्म !

वन गया
दिनमणि
काल और
फणि
करता दशित
रश्मि जिह्वाओं से
अदिनी का गान
व्याप गया
गुल
स्पर्शित हिम
अनावृत
गिरि-स्तन
सकोचित
सरिता शिखर
मुलसी
रोमावली वन की
हुमा हलध
सिन्धु नीच का
नीली-वन्ध
करने लगी
आर्तनाद भिराए
सिंहर उठा गगन
खोलेंगे नगन
अब स्मरहल
होगा भलम
शीलम भुजग
पुन पड़ता
जलध डमरु का नाद
तमुलता
नड़ित त्रिशूल
लगता
होगी फिर संजीवित
विमुर्छित तपुका ।

० निःशब्द !

नहीं
समर्पण,
मैं
पुरुषार्थ,
निधति
निर्मिति
मेरे गत की,
स्वतंत्र स्वने में
आगत अनागत
बनूं अंगुलिमाला
या तयागत
यह निर्भर
मेरे विचार पर,
नहीं समर्थ
कोई दे
वरदान, शाप
करता
अर्जित
स्वयं पुण्य पाप
होंगे
क्षयित ये
होते ही मन
कुण्ड विमुक्त
आग !

१९.५.४७.

४६

० अंजुरी में समन्दर !

अप
एक अञ्जु
मेरी हवेली पर
तुम्हारी
देखा मैंने
प्रतिबिम्बित था
'मैं'

ढुलका
एक अञ्जु
तुम्हारी हवेली पर
मेरी
देखा तुमने
प्रतिबिम्बित था
'तू'

लहरा उठा
अंजुरियों में
एक समन्दर
संवेदना का !

० कठफोड़ा !

ठक, ठक, ठक
टूट गई
चरती पर पसरी
दोपहरी की
कच्ची नींद,
मार रहा
वज्र-चोन्न
तने पर
खुट बढई,
नहीं लुभाते
रसील फल
सुरमिल सुमन
उस का व्यसन
करना
भूल में देदे
लेने भेद
किटप के
अन्तर का,
वह मूढ
कैसे जावेगा
गूढ
जो है
विदेह !

20.5.87

४८

० मंत्रिक शब्द !

लीन कर

ले आता

चुम्बक की तरह

मंत्रिक शब्द

फलम की नोक से

समग्र सन्दर्भ को

कागज पर

अनायास ,

सही है

सृजन .

मानमती का कुत्ता

है अनुभूत

संवेदन की

एक सत्य प्रक्रिया

निष्पत्ति जिस की

कोई कालजयी कृति !

21.5.87

४६

० सांझ !

होते ही
तिरोहित
सूर्य
झुटपुटा गई
कौमलांगी सांझ
भर गये
नयन में
नखत अश्रु
पुंछ गंधा
मांश का सिन्दूर
बह आया
शितिज कपोलों पर
काजल
पड़ा नभ-आंगन में
खंडित चूड़ी सा
दूज का-चांद
कहत
लुटे सुहाग की व्यथा

० सांझ - एक चित्र !

फर गया
समय की-
डाल से
सूखे पत्ते सा
एक और दिन,
डब डबा आई
गगन की- आँख
बैठ गई
आकर
पुली-नी के नीउ में
सांझ की-
चिड़िया
दवाये
चोंच में
पंख भी का
कुतरा हुआ
चन्द-पल !

० सत्य - झूठ !

नहीं चलता
सत्य
कभी पगडंडी पर
करती
अगुसरण
पगडंडी उलका
हो-ते ही-
ओअन सत्य
बन जाती
वह
झूठ का
राजमार्ग !

27.5.87

५२

० कल्पना के पांव !

बरसती
पुलकित सी
देहकली
दोपहरी में
उगा ले
मन में
एक बरगद
अनुभूत
शीतल सधन छांटे
कर दे
इसकी
पुलकित जटाओं में
उलझा कर
मधुमाला के
'पंचंड सूर्य' को
निहतेज
लगा ले
कल्पना के पांव
पहुंचे
ओ श्रान्त बटोही-
निरापद
मधुमाला के गांव !

28.5.87

५३

० नागफणी ।

बगिया की
लक्ष्मण रेखा
नागफणी
अपने ही
अस्तित्व की-
विडम्बना ।
फिलानी- कु रंग
अथावह
दिनों की
को छिन सी
अप्रावकी- देह
नहीं देता
मूले मटके की
कोई नभन
इस अस्पृश्या को
स्नेह,
नगावे है
केवल एक
मोंडे कुतूहल के लिये
नाग गमलों में
कि मौ के
देख इसे
उत्तिवहू अधिका
सौ-सर्व बोध ।

० नियति !

नहीं है
किसी भी
समस्या का
शाश्वत समाधान,
निहित है
हर समाधान में
एक नई
समस्या का बीज
जो होगा
प्रक्षुब्धित
करने ही
परिस्थितियों का मौसम,
रेंजना होगा फिर
उसकी
जटिल जड़ों की
लपेट से
बचने का
कोई उपाय
यही है
नियति का
वह चकव्यूह
असमर्थ है
जिसें भंग करने में
चेतना का
निरक्षोभ
अभिभूत ।

० विश्व-पुरुष !

लथपथ
रक्त से
विराट देह
विश्व पुरुष,
नही किया
क्षान् विशान्
किसी अदृश्य
रिपु ने
ह्वंभ हो कर
संज्ञाहत
संवेदनाशून्य
कर रहा
निरन्तर
अपने ही-
अंग प्रपंग पर
भारण पहार
उस ह्रिमुख
आरुण्यवत्
लेने के लिये
जिस के एक मुख ने
प्रतिशोच
दूसरे मुख से
निगल लिया था
आत्मघाती
विष-फल !

० गीतों की माला।

पिरोई है
मैंने
अनुभूति के
अलख चागे में
दिव्य शब्दों के
मनकों से
गीतों की
सुवासित माला,
खड़ी है
मेरे सामने
हीरक-नीलम
स्वर्ण-रजत
हाड-भांस की
अनेक अनुपम
हृदय हीन प्रतिमाएं
पर मेरी दृष्टि में है
वह भिक्षुक
दे रही- हैं
जिस की संवेदना
मिली रोटी में से
आचा टुकड़ा
उस अपरिणित
रुग्ण सूरदास को
जो लेता है
अनदेखा
रो दिन से भूखा
मंदिर की
संगमर मरी सी दियों पर।

० अपने में विश्व।

चञ्चलता है
चिनगारी के
हृदय में
मस्मक रावानन,

मञ्चलता है
बूंद के
प्राण में
अपार पारावार,

निकलता है
क्षण के
विवर से
सर्वगुप्ती महाकाल,

जनमता है
शब्द की.
कोरव से
सृजन का ब्रह्मनाद,

बोझेगा वर
अनुभूतेगा जो
अपने में विश्व।

० सूर्य !
 नहीं बंछा है
 सूर्य
 दिशाओं से,
 भ्रम
 उदय - अस्त,
 तल तम
 अक्षम
 कदने में लाजात,
 वह
 आलोक हनात
 हिरण्य पुष्प
 उल्ल
 ज्वेतना का
 र-चली रश्मियां
 पीयूष वर्षा मेघ
 होती-
 गजित
 मयुवंती-चरली
 करली-
 पुष्पित
 रूप रंग रस गन्ध
 वह
 पुष्प हन
 सृष्टि के
 महाकाव्य का !

० छेन्हे मुक्ति !

बिना बिद्ये
प्रतिरोध
वासनाओं का
मे से होगी
संभूत
प्राण में
संजीवनी-अर्ज !
बिना सुने
अंतवासी
अच्युत की
गुरु गंजीर गिरा
'न दैनं न पलायनं'
नहीं दूटेगी
जीवन के कुल क्षेत्र में
त्रस्त रहने
मन-अर्जुन की.
विमूढ भूच्छा,
उठे सन्धान
चिन्तन के गाण्डीव की.
उलंछा पर
विचार का
प्रखर शर.
कर छेन्हे मुक्ति
बिह्वल
चेतना के
संशयशस्त भीष्म का
मोहाकुल वस !

० प्रतिक्रिया।

सोचो
देने से पहले
१०२
किसी कुण्डा को
क्या होगा
इसकी प्रतिक्रिया ?
स्मात्
काणभर का
निंतन
बन जाएगा तुम्हें
एक ऐसे
संक्रास से
जो बन जाता
राम का
वट ११
नहीं छोड़ा
जिसने पीछा
उस काक जपेन्त का
लगा था
जिसकी चंचु में
लड्डू
झीता के
अंगूठे का ।

26.6.86:

० विशेषणों का बोझ

छोते हैं
बेचारे
तथाकथित
बड़े लोग
बोझ
आरी भरकम
विशेषणों का
उल
मजदूर की तरह
जिस के
सिर पर रखी
स्वर्ण जेठिका
नहीं हैं
उल की- अपनी ।

28.6 97.

६२

० आषाढ का पहला दिन !

आया
उतर
शुक्र-रथ से
बढ़ने
बलुआ को
आषाढ का पहला दिन
बाबू
बाबू की-
जामुनी पाग
रौंसे विभूत की
कलगी
पहने सुश्रुत का
हार,
देखे
उमड़े रैन
सूखे पोलर
अर आषाढ
बढ़ चला
बपनों से नीर
तोड़ कर
मेढ़ रैन की
तटवत्
पोलर का
पहुंचे आसू
प्रिया के
पीटर की- जौपाल,
बपके लुभे
चेहरे
उठे हल
नाचे मोर
पुलकाया जातक
हुई हरी-
विरह विदग्ध
होटे दिन
माटी की- कोरल

० काल !

हाँथ काट
समय की सीमा
नहीं
वन पायेगी
कोई कली
फूल
कोई सुमन
फल ,

आज कल
कल्पनाएं
कुण्ठित चेतना की

काल अखंड
करेगा पूर्ण
हर खण्ड को
देकर
अपने
अनुशासित
व्यक्तित्व की
पूर्णता !

4.7. 87

६४

० कविता ।

नहीं है

दूर की
कौड़ी लाने की
कला
कविता ,

खडे हैं

प्रतीकारत

गुम्हारे

आसपास

जीवन के
वे

महान सत्य

मिलते ही

जिनसे

हृष्टि

हो उठेंगी

मुखरित

स्वतः

काल जमी नृचाएं !

५.७.४७.

० विडम्बना।

कल्पता है

गणित

जाना जा सकता है

उस से

पौद गलिक यथार्थ,

चिंतन है

देशनि

जाना जा सकता है

उस से

आत्मिक सत्य,

स्वीकारता है

विज्ञान

काल्पनिक अंक,

नकारता है

अनुभूति त अक्षर,

यह

विडम्बना

गदी बनने देती-

उसे ज्ञान

जो है

समग्र का पथप्रवाची ।

० आकांक्षा।

नहीं है
आकांक्षा
कि, कल
कोई
सिद्धि प्राप्त.

—वाहता हूँ
गुन्धि
स्वभावगत
वासनाओं से
हो गया है
खंडित
जिन से
क्षण जीनी
क्षुब्ध तुल में
आत्मा का
अक्षंड
आनन्द।

6.7.87

६७

० काश !

रह गई
हृदय चीन
शिलाखंडों पर
टंकित
नवागत की
कलुषा ।

सूख गई
मानवीय
संवेतना से
निसृत
संवेदना की-
निर्भरी ।

काश !
होता
शिलाखंड
मानव-हृदय !

6.7.87

६८

० अगला ।

खटखट

रहा हूँ

कब से

बाहर निकलने

के लिये

अपने ही-

घर का बन्द द्वार ?

नहीं जानी-

मेरी

अमित दृष्टि

उस अगला पर

लगा कर

जिसे

क्षण भर पहले

क्रिया था

स्वयं को

सुरक्षित अनुभव,

होने ही-

एकान्त

आ गया

बाहर

हृदय का भय

नहीं खोल पाती--

विजड़ित

अगला

मेरी भीत

चेतना की-

सुन्न अंगुलियाँ ।

०-चेतना की दूब !

मैं
मान
एक बिन्दु
समा गया
मुझ में
अनन्त क्षणों का
सिन्धु,
उमड़ते
धुमड़ते
आतस के
आतस से
गीतों के
काजखाने में
वरसते
चार सप्ताह
हरिमा जाली
बार बार
जीवन की-
प्रखर झुप से
कुम्हलाई
चेतना की-दूब ।

० मैं !

माता
अरली
पिता
सूर्य
शिशु
मैं

जुड़ कर

गुम ले

मृत्युएं

वन जाती

तय

नही होगा

क्षय

कभी-

बीज चेतना का

निहित जो

गुम में ,

गत आसत

अनागत

केवल

संज्यों व्यन

उस काल पुरुष के

जिसके

होने का साक्ष्य

एक मात्र

मैं ।

6.7.87

० कसौटी !

मत हो
प्रतिबद्ध
सत
असत से
मन !
लेते ही
संकल्प
जनमे गा
राम के साथ
रावण,
हो जाये गा
वामन
जय पराजय की
अस्थियों से
चेतन
केवल है
करणीय
अकरणीय का
निकष-
विवेक
कस
उस पर
स्वयं को
होना
प्रत्यक्ष
कलमों, कंचन !

० आलम्बन !

देखा
सपने में
हेम मृग,
नहीं
बन पाई
वाचा
मूर्च्छा
इन्द्रियों की,
लगा
दौड़ने
उस के पीछे
बन कर
लपटें
हाव, पैर
नयन
अमूर्त मन
ले कर
भटकी हुई
आत्मा का
आलम्बन !

१९.१.४१

० पुरुषार्थ !

केवल
विश्लेषण
क्रिया के
तप, जप
यम, नियम,
पुरुषार्थ
सहज प्रार्थना
देती जो
कर
मन को
अ-मन !

20.7.87

68

० सन्दर्भ !

नहीं

सुनी है

अगर

कथा

राम

रावण की

कैसे

पहचानेंगे

कोन सा है

किस का

मुखौटा ?

जानना होगा

पहले

सन्दर्भ

अनुभूतों से

तब

जुड़ा है

किस शब्द के

मुखौटे से

सत्य

किस से

असत्य ?

20.4.87

6५

० ममता !

आंख
खुली तो
देखा
चूम रही थी
गोरी छूप
मुँडेर पर
अरे
बुझे दीपकी
संभलाई
बाती !

० शिशु-मन ।

ढल-वली

वय,

नहीं हुआ

वयस्क

शिशु मन ।

करता है

हठ

उस के लिये

नहीं है जो

उस का प्राप्ति,

दौड़ता है

भूँद कर आँख

इन्द्रधनुषी सपनों की

तितलियों के पीछे

खा चुका है

ठोकर

अनेक बार

निर्मम सत्य की

बहा है रक्त

पर अपने में

आसक्त

नहीं संभल पाता

वेचारा

शिशु-मन ।

० महाप्रज्ञा ।

आर
गिरा
मुद्रित झूल
मूल के
शरण में,
महाप्रज्ञा
वह
गया
स्वयं की
शरण में ।

17.8.87

७८

० गति-अगति !

गति के
प्रतीक
सूर्य की
हेमाश्वि रश्मियां
सुदूर से
चल कर
पहुंचती हैं
चरती पर !

अगति का
प्रतीक
अन्धा अन्धकार
उठ कर
क्षितिज से
पसर जाता है
गगन के
आंगन में ।

० अभिनय ।

अगर चाहते पाना प्रियतम
सीखो पहले खोना,
दरों अंक में जीज, अकिंचन
रज उगलेगी सोना,

बिना बिसारे स्वत्व, किसी का
क्यों अपनत्व मिलेगा ?
मुरझि त्याग का भाव जंगे तो
क्षण में सुमन खिलेगा,

देना तो लेने का केवल
सहज सरल अभिनय है,
नहीं जानने का विस्मय ही
चिन्मय का परिचय है ।

० ओ आत्मन् !

कर
स्वयं पर
अनुकम्पा
खोल
विवेक की
अंगुलियों से
रेशमी चेतना में
पड़ी गांठ,
नहीं तो
कैसे पहुंचेगा
प्राण-कूप के
निथरे ज्ञान-नीर तक
देह पनघट का
मन घट
ओ आत्मन् !

20.8.87

८१

० श्रद्धा !

मत रख
संशय की
सीलन से भरे
मनः काष्ठ में
विश्वास की
कुंआरी चिनगारी,
कर देगा
कसैला घूम
अवरुद्ध
प्रार्थना रत
कंठ,
चूक जायेगी-
लक्ष्य
रक्तिम दीठ,
झेलने दो
अभी इसे
ज्ञान-सूर्य का
सहज आतप,
सूखने दो
वासना की नमी,
वन जायेगा
यह स्वयं सूर्य
धू कर
हृदय की श्रद्धा की
एक अकिंचन
तीली !

